हमारी वास्तविक यात्रा :

प्रेम की राह पर आगे बढ़ना

प्रिय मित्रों,

सभी आध्यात्मिक जिज्ञासुओं का एक समान लक्ष्य होता है, जो कि आत्म-परिवर्तन है। कई आध्यात्मिक मार्ग गुरु पर निर्भरता को बढ़ावा देते हैं, लेकिन जब तक हम किसी और पर निर्भर रहते हैं तब तक परिवर्तन नामुमकिन है। लेकिन जब हम व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी लेकर कहते हैं, ''मुझे बदलना ही होगा,'' तब जाकर परिवर्तन मुमकिन हो पाता है। यहाँ तक कि ईश्वर पर निर्भरता भी एक तरह से ''अपनी ज़िम्मेदारी को दूसरे पर डालना है।''

यदि अपने क्रम-विकास या परिवर्तन के लिये मैं अपने गुरु, या किसी और को ज़िम्मेदार ठहराता हूँ, तो वह परिवर्तन नहीं होगा। इसका कारण बहुत सरल है - जो कुछ भी ज़रूरी था वह ईश्वर और गुरु ने पहले ही कर दिया है। अब एक जिज्ञासु के रूप में यह मेरा काम है, कि मेरे दिल में बीजरूप में जो दिया गया है उसे मैं महसूस करूँ और उन बीजों को पहचानकर उन्हें अंकुरित एवं फलित होने दूँ। नियति पर निर्भर रहना इससे भी ज़्यादा निरर्थक है - हालाँकि यह सही है, कि हमने ही अपने कर्मों से अपनी नियतियों का निर्माण किया है।

ख़ुद को बदलने की गहन आकांक्षा होने से हम पाते हैं कि आध्यात्मिकता (ख़ासकर भारतीय परम्परा में)

कर्म, ज्ञान और भक्ति योग के बारे में बात करती है। *हार्टफ़ुलनेस* वे वाकई इन तीनों का एक सुंदर मेल है। फिर भी ऐसे मार्ग पर यात्रा करते हुए, हम राह में कई खतरे देखते हैं क्योंकि हम कर्म और ज्ञान के मार्ग को ही बहुत ज़्यादा अहमियत देते हैं। यदि इन्हें ज़रूरत से ज़्यादा अहमियत दी जाये तो, इनका उद्देश्य इस मार्ग की सूक्ष्मता के विपरीत हो जाता है।

आपने सुना होगा कि आध्यात्मिक ऊँचाइयों से पतन होने पर ब्राह्मण लोग ब्रह्म-राक्षस बन जाते हैं और बड़ी-बड़ी ऊँचाइयों से पतन होने पर योगी लोग योग-भ्रष्ट हो जाते हैं। असंख्य कारणों से योग की उनकी यात्रा अधूरी ही रह जाती है। ज्ञानी और कर्म करने वालों का पतन तो हो सकता है, लेकिन क्या आपने भक्त के पतन के बारे में सुना है? भक्ति-भ्रष्ट जैसा शब्द अस्तित्व में नहीं आ सकता, क्योंकि भक्त भगवान की शरण में होता है। जिस किसी ने भी शरणागति हासिल कर ली है ईश्वर उस इंसान की रक्षा करेंगे, यानी, जिसने सही मायनों में अत्यंत आभारयुक्त भाव के साथ ख़ुद को समर्पित कर दिया है। समस्याएँ तभी शुरू होती हैं जब हम कर्त्ता बन जाते हैं। किसी भी भक्त का कभी भी आध्यात्मिक पतन नहीं हुआ है; ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। यदि कभी ऐसा होने भी लगे, तो यह महज़ सच्ची भक्ति या शरणागति की कमी को दर्शाता है।

जिस किसी ने भी शरणागति हासिल कर ली है ईश्वर उस इंसान की रक्षा करेंगे, यानी, जिसने सही मायनों में अत्यंत आभारयुक्त भाव के साथ ख़ुद को समर्पित कर दिया है। समस्याएँ तभी शुरू होती हैं जब हम कर्त्ता बन जाते हैं। किसी भी भक्त का कभी भी आध्यात्मिक पतन नहीं हुआ है; ऐसा कभी हो ही नहीं सकता।

जब पहली बार मेरा परिचय सहज मार्ग से हुआ, तब मेरी प्रशिक्षक, बहन द्रौपदी ने मुझसे एक मूलभूत सवाल किया, ''आप क्यों ध्यान करना चाहते हो?'' मेरा जवाब था, ''मैं ईश्वर की खोज कर रहा हूँ।''

आज, जब मैं अपनी कुछ व्यक्तिगत मान्यताओं के बारे में सोच-विचार करता हूँ, तब मैं पाता हूँ कि मैं चीज़ों को अलग तरीक़े से समझने लगा हूँ, और यह भी कि उस समय मैं कितना ग़लत था। हालाँकि हममें से अधिकांश लोग कहते हैं कि हम ईश्वर की खोज कर रहे हैं, मगर अब यह बात सुनने में मज़ाकिया लगती है। हो सकता है कि बहुत छोटी चीज़ें आँखों को नज़र न आयें, लेकिन एक ऐसी विभूति जिसमें सबकुछ समाया हुआ हो उसे हम अनदेखा कैसे कर सकते हैं? साथ ही, जब वह हर जगह है तब हम उसे नहीं देख

शुरुआत में ही हम उनसे कैसे अलग हुए, जिससे कि उनकी तलाश करना हमारे लिये अब और लाज़िमी हो जाता है? उस खोये हुए जुड़ाव को फिर से स्थापित करने के लिये, हमें उन कारकों को पहचानकर निकाल देना होगा जिनके कारण यह अलगाव हुआ है। यही इस वास्तविक यात्रा की शुरुआत है।

पाते, ठीक वैसे ही जैसे एक मछली जो कि अपना पूरा जीवन सागर में बिताती है, उस सागर के बारे में उसे कोई अंदाज़ा नहीं होता। दूसरी ओर, हम आयामी अनंतता के रूप में ईश्वर की कल्पना करते हैं और भ्रमित हो जाते हैं, क्योंकि हमने कभी भी उसे देखा नहीं है और इसीलिये उसके अस्तित्व के दूरतम छोर की हम कल्पना तक नहीं कर पायेंगे। दिव्यता और भी आगे जाकर इसके अति सूक्ष्म स्तरों पर अदृश्यता का स्वरूप अपनाती जाती है।

भले ही मैं उनकी खोज करना शुरू कर दूँ, लेकिन मैं अपनी सीमित समझ के दायरे में अनंतता का अनुभव कैसे कर सकता हूँ, जब तक कि उनकी तरफ़ से किसी स्तर की खोज न हो? अनंतता हमारी समझ के परे है – इस बात को कैसे समझा जाये कि वह छोटे से भी छोटी है और बड़े से भी बड़ी, यानी अणोरणीयान् और महतोमहीयान् है? इसके बाद भी, एक और मुश्किल खड़ी हो जाती है क्योंकि जो स्थूल है वह कभी भी सूक्ष्म की सराहना नहीं कर सकता है।

इसलिये, पुनीत और प्रेमपूर्वक भाव के साथ शरणागति की कल्पना ही एकमात्र तरीक़ा है –

वो दिल कहाँ से लाऊँ, जो तुझे पहचाने!

इस सबके परे, हमें एक मूलभूत पहेली को सुलझाना है – शुरुआत में ही हम उनसे कैसे अलग हुए, जिससे कि उनकी तलाश करना हमारे लिये अब और लाज़िमी हो जाता है? उस खोये हुए जुड़ाव को फिर से स्थापित करने के लिये, हमें उन कारकों को पहचानकर निकाल देना होगा जिनके कारण यह अलगाव हुआ है। यही इस वास्तविक यात्रा की शुरुआत है।

कल्पना करें कि आप सागर के किनारे झूमती हुई लहरों का आनंद ले रहे हैं। लेकिन तब आप सागर की गहराइयों में मौजूद पानी को नहीं देख पाते हैं। लहरें भी यही सवाल पूछती रहती हैं, ''सागर कहाँ है?'' वे

भी अपनी तलाश में बेचैन होती हैं। जिस पल वे धीमी होकर रुक जायेंगी, उसी पल सतह की लहरें सागर के साथ एक हो जायेंगी और तब सबकुछ स्पष्ट हो जाता है।

लहरें यह भूल जाती हैं की उनका उद्गम सागर से ही हुआ है – कि वे उसी में से पैदा होकर उसी में वापस मिल जाती हैं। लहरों और सागर के एक हो जाने के लिये, एक ही उपाय है – अपनी गति को धीमा करना, रुकना और स्थिर हो जाना। अंतिम समापन या आख़िरी साँस का रुकना ही मृत्यु है। तो, यदि हम कम से कम नक़ल करके मृत्यु के लक्षणों को आत्मसात् कर सकें, जीवित-मृत या मरजीवा बन जायें, तो स्वीकार्यता अपने आप ही हमारे दिलों में पैदा हो जायेगी। अब, उस मूल सागर के साथ एक होने का पावन क्षण शुरू होता है, एक ऐसी अवस्था जो समाधि की मौलिक अवस्था के समान है। शारीरिक मृत्यु कतई समस्या को हल नहीं करती। वास्तव में, समस्या हमारे सूक्ष्म शरीरों में छिपी रहती है, और जन्म एवं मृत्यु का चक्र अनंतकाल तक चलता ही रहता है।

ख़ुद को मिटा देने की कला, प्रियतम के प्रेम में ख़ुद को सराबोर होने देने की कला, ही भक्ति है। जब हम ख़ुद के परे जाते हैं ठीक उसी समय समस्या का हल मिल जाता है।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहीं

सब अँधियारा मिट गया, दीपक देखा माही।।

जब 'मैं' था, हरि नहीं थे; अब हरि 'है' और 'मैं' नहीं हूँ। जब मैंने अपने भीतर प्रकाश को देखा तो सारा अंधकार (भ्रम) मिट गया।

'मैं-पन' का भ्रम वह अंधकार है जो हमें ईश्वर के दर्शन करने से रोकता है। जब वे हमारे दिल में हैं, तब वहाँ पर सिर्फ़ प्रकाश है, और हमारी अपनी उपस्थिति का अंधकार अनुपस्थित रहता है।

तो, यदि हम कम से कम नक़ल करके मृत्यु के लक्षणों को आत्मसात् कर सकें, जीवित-मृत या मरजीवा बन जायें, तो स्वीकार्यता अपने आप ही हमारे दिलों में पैदा हो जायेगी। अब, उस मूल सागर के साथ एक होने का पावन क्षण शुरू होता है, एक ऐसी अवस्था जो समाधि की मौलिक अवस्था के समान है।

जागरूकता की अंतिम हद पूर्ण दैवीकरण है। जागरूकता की ऊँचाइयाँ और गहराइयाँ चेतना के सागर में जाकर ही मालूम होती है। जब हम इतना समझ जाते हैं, तब हमें प्रिय बाबूजी के मर्म भरे सवाल का मतलब समझ में आता है – "इस चेतना को कौन सहारा देता है?" जब हम प्रेम और उस मूलभूत विनम्रता को नकारते हैं सिर्फ़ तभी हम ख़ुद के अस्तित्व की ऊँचाइयों और गहराइयों को अपनी नज़रों से ओझल पाते हैं, फिर हमारे पास जागरूकता का संकुचित दायरा ही बचता है।

एक इंसान जिसने अपना आंतरिक दिशा-निर्देशक खो दिया है, या जिसका दिशा-निर्देशक उस दिशा की ओर इशारा करता है जो कि दिव्यता से बिलकुल विपरीत दिशा में है, तो उस इंसान से ज़्यादा तुच्छ कोई और नहीं होता। भक्ति, प्रियतम के लिये तीव्र प्रेम, भावनाओं की लहरों के उतार-चढ़ाव को, होने और बनने के भाव को मिटाकर, दिव्यता के साथ एक समान समरूपता ला देती है। इसके विपरीत, प्रियतम के ख़याल से दूर जाना ही दु:ख-तकलीफ़ और दर्द लाता है।

भक्ति, प्रियतम के लिये तीव्र प्रेम, भावनाओं की लहरों के उतार-चढ़ाव को, होने और बनने के भाव को मिटाकर, दिव्यता के साथ एक समान समरूपता ला देती है। इसके विपरीत, प्रियतम के ख़याल से दूर जाना ही दु:ख-तकलीफ़ और दर्द लाता है।

यहूदी परम्परा 'पाप' की परिभाषा में काफ़ी सटीक है – यानी जो पूजने योग्य है उससे दूर चले जाना। बाबूजी कहते हैं कि अकृतज्ञता पाप है। निश्चित रूप से जब हम अकृतज्ञ बन जाते हैं तब सच्चे सम्बन्ध से भटकाव की विभिन्न शाखाएँ बनना शुरू हो जाती हैं। अकृतज्ञता दूर जाने की शुरुआत है; इसीलिये, यह पाप है। ऐसे में प्रेम का वजूद न होने से सम्बन्ध खत्म हो जाते हैं। सम्बन्ध को खत्म करके आप कहाँ जाओगे? ज़रा सोचिये, यदि सागर की लहर से पूछा जाये, "प्यारी और ताक़तवर लहर, तुम इस सागर से दूर कहाँ जाओगी?"

इस नज़रिये से, ऐसा कोई भी भटकाव जिसमें हम अपनी जागरूकता को सांसारिक सम्पत्ति, शरीर, मन, बुद्धि से जोड़ लेते हैं तो यह अपने जीवन के केन्द्र, जीवन के स्रोत, अपनी आत्मा से दूर चले जाने के समान

है। हम देखते हैं कि बाबूजी किस कदर इतनी खूबसूरती से माया और अहंकार के साथ जीव की पहचान को सरल शब्दों में समझाते हैं और सांख्य-शैली के आकृतिक चित्रण से 23 वृत्तों में उसे दर्शाते हैं। इस चित्र में, माया के सिर्फ़ 5 वृत्त हैं, वहीं अहंकार के 11 वृत्त हैं। इसका मतलब यही है कि यह अहंकार ही है, जो हमें केन्द्र से दूर, परिधि की ओर जाने के लिये बाध्य करता है। अहंकार माया से ज़्यादा शक्तिशाली अवरोध है। यह एक तरह का भ्रम है।

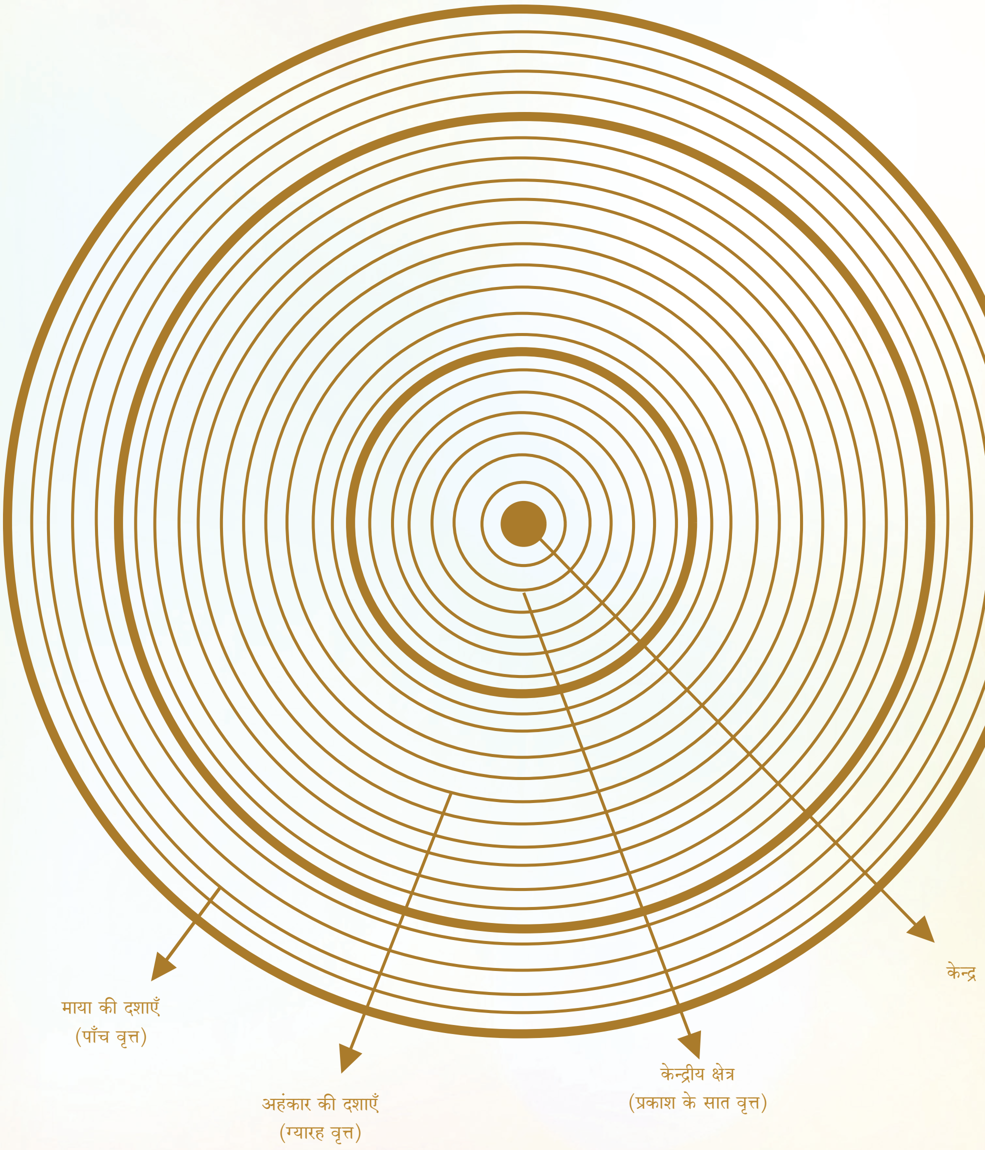

ऋषि पतंजलि इसे भ्रान्तिदर्शन कहते हैं, यानी ग़लतफ़हमी। मैं सांसारिक चीज़ों को अर्जित करने के खिलाफ़ नहीं हूँ, लेकिन ख़ुद की पहचान बाहरी सम्पदा और साज़ो-सामान से करना एक तरह से आंतरिक दरिद्रता को दर्शाता है। ऐसी सम्पत्ति सिर्फ़ भ्रान्ति पैदा करती है, यानी कि भ्रम या असुरक्षा। जीवन इस पहचान द्वारा निर्मित किये गये छलावे के तहत बीतता जाता है। यहाँ तक कि हममें से सबसे श्रेष्ठ लोग भी इस सच्चाई को समझ नहीं पाते हैं।

भ्रम, अज्ञानता, अंधकार और अनभिज्ञता की छाया में बिताया गया जीवन एक तरह से नरक में जीने के समान है, जबकि स्पष्टता, अबोधता और उत्साह के साथ बिताया गया जीवन स्वर्ग जैसा होता है। यही भक्ति की सुंदरता है और वह सबकुछ जो इसके परिणामस्वरूप आता है। जिस दिन हम अंधकार रूपी अज्ञान भरी जीवनशैली से सच में ऊब जाते हैं, हम निराश होकर ठान लेते हैं, ''इसके बाद से, मैं ऐसी जीवनशैली अपनाऊँगा जो मुझे अपने अंतस् से जुड़े रहने में सहायता प्रदान करे।''

यह सागर की सतह पर लहरों के थम जाने की शुरुआत है। सभी प्रकार की माँगों को पूरा करने के लिये रोज़ाना के प्रयासों से उभरने वाले संघर्ष एक तरह की तपस्या बन जाते हैं। यदि यह तपस्या बन जाये, तो हम महज़ अपना कर्तव्य पूरा करने से आगे बढ़ते हुए निश्चित रूप से प्रियतम की खातिर प्रेम से कर्तव्यों को पूरा करने की ओर रुख़ करते हैं। और यही मार्ग अचूक भक्ति में विकसित हो सकता है।

भ्रम, अज्ञानता, अंधकार और अनभिज्ञता की छाया में बिताया गया जीवन एक तरह से नरक में जीने के समान है, जबकि स्पष्टता, अबोधता और उत्साह के साथ बिताया गया जीवन स्वर्ग जैसा होता है। यही भक्ति की सुंदरता है और वह सबकुछ जो इसके परिणामस्वरूप आता है।

भक्ति का मतलब यह भी है - जागरूकता के बोध में जीवन जीना, जीवन में सभी विपरीतताओं का पूरी जानकारी, स्वीकृति के साथ सामना करना। ध्यान सिर्फ़ एक मानसिक गतिविधि नहीं है बल्कि यह ऐसा कुछ है जो मन और शरीर के परे जाता है। कई लोग शिकायत करते हैं कि उनका ध्यान तरह-तरह के भटकाव के कारण अकसर सही तरह से नहीं होता है, लेकिन भक्ति के साथ किया गया ध्यान इंसान को अधिक सूक्ष्मता के साथ उस 'अदृश्य' की अनुभूति करने देता है क्योंकि मन किसी तरह के ज्ञानात्मक और आवेगपूर्ण झुकाव से रहित होता है। भटकाव विभिन्न प्रकार के मानसिक विचलन के अंतिम परिणाम होते हैं। ये मानसिक

भटकाव हमारे अपने अनुकूलन यानी ढर्रे में ढल जाने के परिणाम हैं, जिन्हें हम संस्कार कहते हैं।

संस्कारों को धीरे-धीरे निकालते हुए मन को नियंत्रित करना, कई मामलों में एक धीमी प्रक्रिया है। हमें अपने आंतरिक वातावरण में रम जाने के लिये बहुत ज़्यादा समय लगता है क्योंकि संस्कार हमें धीरे-धीरे करके आंतरिक विशालता में प्रवेश करने देते हैं। तभी जाकर हम यह समझ पाते हैं कि हमें न सिर्फ़ दर्द सहने में परेशानियाँ हैं बल्कि आनंद को भोगने में भी हैं।

हमारे अभ्यास के सम्बन्ध में सुखद या दुःखद अवस्था पर पहुँचने, और उस अभ्यास को प्रदान करने वाले

भक्ति का मतलब यह भी है - जागरूकता के बोध में जीवन जीना, जीवन में सभी विपरीतताओं का पूरी जानकारी, स्वीकृति के साथ सामना करना। ध्यान सिर्फ़ एक मानसिक गतिविधि नहीं है बल्कि यह ऐसा कुछ है जो मन और शरीर के परे जाता है। कई लोग शिकायत करते हैं कि उनका ध्यान तरह-तरह के भटकाव के कारण अकसर सही तरह से नहीं होता है, लेकिन भक्ति के साथ किया गया ध्यान इंसान को अधिक सूक्ष्मता के साथ उस 'अदृश्य' की अनुभूति करने देता है क्योंकि मन किसी तरह के ज्ञानात्मक और आवेगपूर्ण झुकाव से रहित होता है।

के सम्बन्ध में देखें तो, इसमें बीच-बीच में जटिलताएँ होती हैं। जब तक हमारी कामनाएँ पूरी की जाती हैं, हम और ज़्यादा श्रद्धा विकसित करते जाते हैं। जिस पल किसी कामना के पूरे होने में कुछ समय लगता है, हम या तो संस्था, या अपने अभ्यास, या गुरु को परेशान करने लगते हैं। मैं ऐसा रोज़ होते देखता हूँ। उदाहरण के लिये, एक अभ्यासी ने लिखा, ''दाजी, मेरी दशा बहुत अच्छी रही है। आपकी कृपा से मेरी बेटी की शादी हो गई और अब मेरे पास समय ही समय है। मुझे अब कोई चिन्ताएँ नहीं हैं और मैंने ताउम्र आपकी सेवा करने का फ़ैसला किया है।'' कुछ हफ़्तों बाद, उसी इंसान ने मुझ पर पक्षपाती होने का आरोप लगाते हुए शिकायत की! और जब मैंने इस गुस्से की वजह जानने की कोशिश की, तो उन्होंने साफ़-साफ़ कहा, ''आपने मेरी पत्नी की बीमारी में उसकी मदद नहीं की। अब वह इस दुनिया में नहीं रही। मैंने पूरे दिल से आपसे प्रार्थना की थी और देखिये क्या हो गया। अब आप पर मेरा विश्वास नहीं रहा और मैं ध्यान भी नहीं कर पा रहा हूँ। काश बाबूजी यहाँ होते। उन्होंने मेरी पत्नी को ज़रूर ठीक कर दिया होता।''

हर रोज़ ऐसी बातों को सुनकर, हम नारद भक्ति सूत्र 54 में निहित ज्ञान को सही मायनों में सराह सकते हैं -

गुण-रहितं कामना-रहितं प्रतिक्षण-वर्धमानं,

अविच्छिन्नं सूक्ष्मतरं अनुभव-रूपम्।

(नारदभक्तिसूत्राणि 54)

भक्ति भौतिकतावादी गुणों और इंद्रियग्राही संतुष्टि से रहित होती है। यह हमेशा बढ़ती ही जाने वाली, बहुत सूक्ष्म और अनुभवात्मक है।

सच्ची भक्ति पुरस्कारों की कमी या अतिरिक्त पुरस्कारों के परिणामस्वरूप बदलती नहीं है। यह हर परिस्थिति में बढ़ती जाती है। यह आपको अपने जीवनसाथी या बच्चों के साथ का आनन्द उठाने से नहीं रोकती है। जब ऐसे भक्त पर विपत्ति आती है, तब वे उसे बड़ी शिद्दत और आभार के साथ स्वीकार करते हैं। भक्ति कभी भी शर्तों पर नहीं हो सकती है। यह दिल और दिमाग़, तर्क और भावनाएँ दोनों के परे होती है। जीवन को समृद्ध बनाने में - यानी विशुद्ध चेतना पर पहुँचने में भक्ति सबसे प्रभावकारी कारक है।

प्रेम भक्त का विशेषाधिकार है। प्रेम करना यानी प्रेम देना। करुणा भी प्रेम देने के बारे में है। इसके विपरीत, जुनून हथियाने और दूसरों का फ़ायदा उठाने के बारे में है। एक करुणामय दिल जानता है कि इंतज़ार कैसे करना है, वहीं एक जुनूनी इंसान इंतज़ार नहीं कर सकता है। इसलिये, हम बखूबी इस निष्कर्ष पर आ सकते हैं कि यह एक शाश्वत घटना है, फिर चाहे यह कलियुग के दौरान हो या सत्‌युग के दौरान - जिस इंसान पर जुनून हावी हो जाता है वह ख़ुद पर कभी भरोसा नहीं कर सकता। एक इंसान जिसका प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है, तब भी वह इस भरोसे के बारे में अनिश्चित रहता है, कभी ख़ुद पर भरोसा करता है और कभी दूसरों पर भरोसा करता है (जिसका मतलब यह भी है कि कभी ख़ुद पर भरोसा न करना और कभी दूसरों पर भरोसा न करना)। भक्ति में लीन इंसान ईश्वर पर पूरी श्रद्धा के साथ, उस पर भरोसा करता है। ऐसा रूपांतरण उदात्त और उन्नत करने वाला होता है। एक भक्त का भरोसा कभी कम नहीं होता, वह तो हमेशा बढ़ता ही जाता है।

एक बार, सन् 1981 में बाबूजी ने अहमदाबाद में एक सरल सा संदेश दिया था। वे श्री खुशालभाई पटेल

भक्ति में लीन इंसान ईश्वर पर पूरी श्रद्धा के साथ, उस पर भरोसा करता है। ऐसा रूपांतरण उदात्त और उन्नत करने वाला होता है। एक भक्त का भरोसा कभी कम नहीं होता, वह तो हमेशा बढ़ता ही जाता है।

के साथ दक्षिण अफ़्रीका जा रहे थे और इसीलिये वे सिर्फ़ दो दिन तक हमारे साथ रहे। वह सरल सा संदेश अब भी मेरे कानों में गूँजता है :

राहे तलब में ऐसे बेख़बर हो गये,

मंज़िल पे आके मंज़िल को ढूँढते हैं।

वे अपनी तलाश में इतने खो गये कि मंज़िल पर पहुँच जाने के बाद भी वे उसकी तलाश कर रहे थे।

उन शब्दों को सुनकर मुझे परमानंद की अनुभूति हुई। इस बात ने हमें आश्वस्त कर दिया कि हम मंज़िल पर पहुँच गये हैं! एक भक्त के लिये, उसका मार्ग ही उसकी मंज़िल बन जाती है, और यह निश्चित रूप से उस ईश्वर की कृपा और दया का परिणाम है। वरना, हमने तो कुछ भी नहीं किया है।

गुरु और ईश्वर का क्या? यदि ईश्वर किसी चीज़ की माँग करता है, तो वह भी एक याचक ही है। हम उसे अपने स्तर पर नीचे नहीं ला सकते हैं। एक गुरु जो द्वन्द्वों और जीवित-मृत की अवस्था के परे जा चुका है, और परमतत्त्व में लय हो चुका है, तो क्या वह अपने किसी भी शिष्य को अपनी सेवा करने की अनुमति देगा? वह न तो ख़ुद की अहमियत चाहता है, न लोकप्रियता चाहता है और न ही प्रसिद्ध होना चाहता है। शायद गुरुओं के ऐसे गुणों को याद रखना हमें झाँसे में आने से बचा सकता है। भक्तों के रूप में, जिन्हें हम अपना ध्यान, अपनी सराहना और अपने प्रेम का पात्र समझते हैं, उनके साथ अंतस् से जुड़े रहना हमें सीखना चाहिये।

हमारे सभी अभ्यास ऐसे दिलों को तैयार करने के बारे में हैं, जो श्रद्धापूर्ण, निष्ठावान और समर्पित हैं। यह उस दिल की तैयारी ही है जो परमतत्त्व को आकर्षित करती है। अंतिम स्थिति, परिणति सिर्फ़ दिव्य करुणा और दशा के कारण होती है, न कि इस वजह से कि हम उपलब्ध और तैयार हैं।

हम अपनी कोशिशों से चाहे जो भी हासिल कर लें, लेकिन वह ईश्वर द्वारा दिये गये उपहारों की तुलना में तुच्छ ही होगा। इतने सालों से हमारी तपस्या और हमारे समर्पित अभ्यास के साथ, हम अभी भी यह माँग नहीं सकते हैं कि परमतत्त्व हमारे दिलों में आकर बस जायें। हमारे सभी अभ्यास ऐसे दिलों को तैयार करने के बारे में हैं, जो श्रद्धापूर्ण, निष्ठावान और समर्पित हैं। यह उस दिल की तैयारी ही है जो परमतत्त्व को आकर्षित करती है। अंतिम स्थिति, परिणति सिर्फ़ दिव्य करुणा और दशा के कारण होती है, न कि इस

वजह से कि हम उपलब्ध और तैयार हैं। हम भगवद्‌गीता के 11वें अध्याय के 47वें श्लोक में दिये गये ज्ञान की सराहना करते हैं :

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

मा कर्मफलहेतुर्भुर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ।।

आपको दिये गये कर्तव्य को पूरा करने का अधिकार आपके पास है, लेकिन आप उस कर्म के परिणामों के हकदार नहीं हैं।

कभी भी ख़ुद को अपने कर्मों के परिणामों का कारण न समझें, और कभी अपना कर्तव्य न कर पाने के प्रति आसक्त न हों।

हार्दिक प्रार्थनाओं के साथ,

कमलेश

4 जुलाई 2021

कान्हा शान्तिवनम्

पूज्य श्री चारीजी महाराज

के 94वें जन्मोत्सव के अवसर पर दिया गया संदेश

24 जुलाई 2021

heartfulness
advancing in love